रेखा मुखर्जी

बनाम

आशीष कुमार दास व अन्य दिनांक

03 मार्च 2005

[एन. संतोश हेगड़े और एस.बी. सिन्हा, जे.जे.]

अभ्यास एवं प्रक्रियाः

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908; ओ. 12 आर.6 ओ. 21 नियम 95 से 101 आर/डब्ल्यू खण्ड 47, ओ. 47 आर.1 दिवानी प्रक्रिया संहिता, ओ.41:

हक का दावा- विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री- उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि- उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता-स्वामी द्वारा सम्पत्ति की डिक्री को निस्तारित निष्पादन के मुकदमे के निस्तारण तक निष्पादन नहीं कराने हेतु अण्डरटेकिंग दर्ज की- निष्पादन याचिका- निष्पादन न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय से स्पष्टीकरण मांगने का निर्देश दिया कि क्या विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमे के निस्तारण तक निष्पादन में रोक लगाने की आवश्यकता है- न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष दी गई अण्डरटेकिंग से बाध्य है- विशिष्ट निष्पादन के दावे का खारिज हो जाना- समीक्षा याचिका दायर करना- समीक्षा आशिंक रूप से स्वीकृत- इसके विरूद्ध अपील उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार की गई-

अपील, अभिनिर्धारितः कानूनी सलाह पर एक समीक्षा याचिका दायर करने और आंशिक रूप से सफल होने के बाद प्रतिवादियों के लिए पूरी डिक्री के खिलाफ अपील करना संभव नहीं था। उच्च न्यायालय यह मानने में गलत था कि इस तरह की अपील प्रत्याशा में दायर की जा सकती है इसलिए स्वामित्व के बाद में पास की गई डिक्री लागू करने योग्य- सम्पत्ति हस्तांतरण अधिनियम- धारा 53-ए-कलकत्ता थिका टेनेंसी अधिनियम, 1981।

समीक्षा- विस्तार- विवेचन

समीक्षा का अधिकार बनाम अपील का अधिकार- दाेनों के बीच अंतर

सिद्धांत

गृहण का सिद्धांतः प्रयोज्यता

इन अपीलों में निर्धारण के लिए मुख्य प्रश्न यह था कि क्या अनुबंध के विशिष्ट पालना के लिए एक मुकदमे में पारित मूल निर्णय व डिक्री के खिलाफ उत्तरदाताओं द्वारा दायर पहली अपील पर विचार करना न्यायालय के लिए उचित था।

अपील को स्वीकार करते हुये, न्यायालय

अभिनिर्धारितः 1.1 समीक्षा याचिका में विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश 47 नियम 7 दिवानी प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में सुनवाई

योग्य थी।

1.2 यह ऐसा कठोर मामला नहीं था जहां समीक्षा के लिए आवेदन वापस लेने की प्रार्थना वापस ली गई हो जिससे धारा 96 दिवानी प्रक्रिया संहिता के तहत अपील में डिक्री को चुनौती देने के लिए खुला रखा जा सके। प्रतिवादी यह मान सकता है कि अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील की अनुमति दी जा सकती है या उसकी प्रति-आपत्ति खारिज की जा सकती है, परन्तु यदि वह वाद या समीक्षा आवेदन को वापस लेने का इरादा रखता है और वह भी अपीलीय स्तर पर, तो इसके लिए उसे उचित आधार बनाना होगा। ताकि न्यायालय उस पर अपना विवेक लागू कर सके।

1.3 आदेश 23 नियम 1 दिवानी प्रक्रिया संहिता न्यायालय को एक विवेकाधीन क्षेत्राधिकार प्रदत्त करता है। यद्यपि आदेश 23 नियम 1 वास्तव में समीक्षा याचिका पर लागू नहीं होता है, उसके अनुरूप सिद्धांत ऐसे होंगे, जिनके संदर्भ में ऐसे मुकदमे को वापस लेने या दावे के हिस्से को छोड देने वाले आदेश की अनुमति केवल तभी दी जा सकती है जब न्यायालय संंतुष्ट हो कि आदेश 23 नियम 1 के उपनियम 3 में विनिर्दिष्ट शर्ते पूरी हो। आदेश 23 नियम के उपनियम 4 के संदर्भ में, वादी ऐसे हर्जे के लिए उत्तरदायी होगा जो न्यायालय आदेश करे और दावे के ऐसे हिस्से की ऐसी विषय वस्तु के रूप में कोई नया मुकदमा दायर करने से रोका जाएगा। मामले के विशिष्ट तथ्यों व परिस्थितियों में इस तरह के आवेदन पर उच्च

न्यायालय द्वारा भी विचार नहीं किया गया होगा।

सुशील कुमार सेन बनाम बिहार राज्य, [1975] 3 एससीआर 942, संदर्भित।

2.1 इस प्रकृति के मामले में गृहण का सिद्धांत लागू नहीं होता है। धारा 96 दिवानी प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में की गई अपील को उसके आदेश 41 दिवानी प्रक्रिया संहिता में आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। दाखिल होने के समय एक अपील या तो सुनवाई योग्य होगी या नहीं होगी। उच्च न्यायालय, सम्मान के साथ यह अभिनिर्धारित करना सही नहीं था कि ऐसी अपील प्रत्याशा में दायर की जा सकती है। यदि कानून में ऐसी प्रक्रिया पर विचार किया जाता है तो उत्तरदाताओं ने मूल अपील दायर नहीं होगी या विचारण न्यायालय के समक्ष समीक्षा आवेदन को वापस लेने की प्रार्थना नहीं की होगी। कानूनी सलाह पर एक समीक्षा आवेदन दायर करने और उसमें आंशिक रूप से सफल होने के बाद पूरी डिक्री के खिलाफ अपील करना खुला नहीं था, जबकि वाद को पूरी तरह से खारिज कर दिया गया था। प्रतिवादी केवल डिक्री के उस भाग के लिए अपील कर सकते है, जिसके संबंध में समीक्षा याचिका नहीं की गई थी।

2.2 समीक्षा का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है। यदि शर्ते पूरी होती है तो ऐसे अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। अपील का अधिकार भी ऐसा ही है। समीक्षा का अधिकार और अपील करने का

अधिकार दोनों अलग-अलग आधारों पर है, हालांकि कुछ आधार अतिव्यापी हो सकते है। अगर समीक्षा की अनुमित दी जाती है तो डिक्री संशोधित हो जाती है, लेकिन डिक्री का ऐसा संशोधन सहायक या पूरक कायर्वाही नहीं है, ताकि डिक्री को रदद् करने पर इसे पुनर्जीवित किया जा सके।

गरिकपट्टी वीरया बनाम एन. सुब्बैया चौधरी, [1957] एससीआर 488 और गौर कृष्णा सरकार व अन्य बनाम नीलमाधब साहा व अन्य, (1922) 36 कैल. एल.जी. 484 संदर्भित।

3 उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करना सही नहीं था कि प्रतिवादियाेंं द्वारा दायर की गई पहली अपील सुनवाई योग्य थी। इस आदेश से प्रतिवादियों के साथ अन्याय हो सकता है लेकिन यह उसकी अपनी रचना है। सहानुभूति के बावजूद यह न्यायालय बाध्यकारी उदाहरणों की अनदेखी कर उनके पक्ष में फैसला नहीं दे सकता। इसके अतिरिक्त वे असंगत व विरोधाभासी रूख अपना रहे थे। उन्होंने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 53-ए के संदर्भ में अनुबंध के एक भाग के निष्पादन को आगे बढ़ाने के लिए एक किरायेदार के रूप में सूट परिसर पर कब्जे का दावा किया था और साथ ही कलकत्ता थिका अधिनियम के संदर्भ में पश्चिम बंगाल राज्य में निहित स्वामित्व का भी दावा किया था, इस प्रकार हक के वाद में पारित डिक्री लागू करने योग्य हो सकती है। अतः आक्षेप निर्णय को बरकरार नहीं रखा जा सकता तथा तदानुसार रदद् किया जाता है।

सुशील कुमार सेन बनाम बिहार राज्य, [1975] 3 एससीआर 942, संदर्भित।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील संख्या 1509/2005 ।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के 14.10.2004 दिनांकित के निर्णय और आदेश से 2004 के सी.ओ. संख्या 3229।

साथ

सिविल अपील संख्या- 1510/2005।

सांतनु मुखर्जी, सुश्री. अपीलकर्ता की ओर से मृदुला रे भारद्वाज, तरूण कांति और शरद सिंघानिया।

जी. एल. सांघी, जे.एल. डे, प्रतिवादियों की ओर से नंदिनी मुखर्जी, देबा प्रसाद मुखर्जी, एस. मुरलीधर और चंचल कुमार गांगुली।

अनुमति दी गई।

दोनों अपीले परस्पर संबंधित हाेने के कारण एक साथ सुनवाई ली जाकर एक ही निर्णय द्वारा निस्तारित की जा रही है।

पृष्ठभूमि तथ्यः

अपीलार्थी कलकत्ता 77/1, हाजरा रोड पर स्थित एक परिसर का मालिक है। प्रतिवादी संख्या-1 व 2 के पिता मणिक चन्द्र दास [मृतक होने के बाद से] को दिनांक 01.04.1959 को 15 साल के कार्यकाल के लिए उक्त

किरायेदारी में शामिल किया गया था। समय के साथ पट्टे के अवधि समाप्त होने पर अपीलकर्ता ने बेदखली के लिए मुंसिफ थर्ड, अलीपुर की न्यायालय में 105/1975 हक का दावा पेश किया। वाद के लंबित रहने के कारण मूल किरायेदार की मृत्यु हो गई जिसके बाद प्रतिवादी संख्या-1 व 2 को उनकी मां के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया गया। उक्त वाद का हस्तानांतरण होने पर वाद को 412/1977 हक का वाद के रूप में उन्हें क्रमांकित किया गया। उक्त वाद के लंबित रहने के दौरान पक्षकारान ने समझौता किया, जिसके अनुसार बिक्री के लिए समझौते निष्पादित किये गये और जिसके तहत अपीलकर्ता वाद परिसर को प्रतिवादी संख्या-1 व 2 उनकी माता को बेचने के लिए सहमत हो गये। अपील कर्ता ने यहां आयकर अधिनियम 1961 की धारा 280-ए के संदर्भ मे आयकर निकासी प्रमाण पत्र देने के लिए एक आवेदन भी दायर किया। कथित तौर पर इस आधार पर प्रतिवादी संख्या-1 व 2 और उनकी मां निर्धारित समय के अन्दर नोटिस दिये जाने के बावजूद भी ड्राफट डीड भिजवाने में विफल रही। उक्त समझौते को अपीलार्थी द्वारा दिनांक 01.06.1990 को रद्द कर दिया गया। प्रतिवादी संख्या-1 व 2 की मां की मृत्यु हो गई।

दिनांक 31.10.1990 को या उसके आसपास प्रतिवादी संख्या-1 व 2 ने उक्त तीन समझौतों के विशिष्ट अनुपालन के लिए अपीलकर्ता के खिलाफ सहायक जिला न्यायाधीश संख्या-9 अलीपुर के समक्ष एक वाद दायर किया जिसे हक का दावा संख्या-49/1990 के रूप में दर्ज किया गया। उक्त वाद

सम्पत्ति से हस्तानांतरण करने से रोकने के लिए निषेध आज्ञा के लिए एक आवेदन दायर किया। अपीलकर्ता ने इसे रद्द करने के आधार बताते हुये अपनी लिखित आपत्ति दर्ज की। प्रतिवादी संख्या-1 व 2 द्वारा इसका कोई जवाब दाखिल नहीं किया गया। उन्होंने समझौतों को रद्द करने को साबित करने के लिए अपीलकर्ता की उक्त लिखित आपत्ति को प्रदर्श के रूप में चिन्हीत करने लिए वाद संख्या-412/1977 प्रथम मुंसिफ के न्यायालय में आवेदन दायर किया और तर्क दिया कि वाद परिसर कलकत्ता थिका टेनेंसी अधिनियम, 1981 के प्रावधानों के अनुसार पश्चिम बंगाल राज्य में निहित था। अपीलकर्ता के अनुसार प्रतिवादीगण द्वारा उक्त समझौतों के अस्तित्व का आधार लेने पर उनके उक्त रक्षा को अस्वीकार कर दिया गया। उक्त लिखित आपत्ति को उक्त वाद में एक्स-आर के रूप में अंकित किया गया था।

यह विवादित नहीं है कि यह वाद डिक्री होगा तथा मामला अन्ततः सिविल अपील नम्बर 2249/1999 में इस न्यायालय के समक्ष आया। दिनांक 18.10.2000 के आदेश के द्वारा, इस न्यायाल ने विशेष अनुमति देने के लिए आवेदन को खारिज करते हुए अपीलार्थी की ओर से 1977 के शीर्षक वाद संख्या-412/1977 में पारित डिक्री के शीर्षक वाद संख्या-49/1990 के निर्णय तक निष्पादित नहीं करने के लिए एक वचन पत्र दर्ज किया। इस बीच उत्तरदाता संख्या-3 व 4 जो प्रतिवादी संख्या-1 व 2 की क्रमशः पत्नियां थी, को इस आधार पर वाद में पक्षकार के रूप में जोड़े

जाने की अनुमति दी गई कि वे समझौतें में अपने आधे हिस्से के संदर्भ में नामित थी।

दिनांक 18.11.2000 को या उसके आसपास अपीलकर्ता द्वारा वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश संख्या-9, अलीपुर के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे खारिज करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 12 नियम 6 के संदर्भ में बताया गया था। इस आधार पर अनुबंध की विशिष्ट अनुपालना के लिए कहा गया कि अपीलकर्ता के इस तर्क को अपनाकर कि बिक्री के लिए उक्त समझौते रद्द कर दिये गए है, उन्होंने उनके इन दावों की सच्चाई को स्वीकार कर लिया गया है, जिसमें यह भी शामिल है कि समझौतों को रद्द करना वैध था। अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना के लिए उक्त वाद को वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश संख्या-9, अलीपुर द्वारा दिवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 12 नियम 6 के संदर्भ में खारिज कर दिया गया। संविदा की विशिष्ट अनुपालना का वाद प्रतिवादी संख्या-1 व 2 के भाग में स्वीकृति कथित करते हुये आदेश 12 नियम 6 के तहत वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश संख्या-9, अलीपुर द्वारा खारिज कर दिया गया। उक्त आदेश से व्यथित व असन्तुष्ट होते हुए प्रतिवादी संख्या-1 व 2 ने उक्त निर्णय व डिक्री के विरूद्ध समीक्षा याचिका दायर की और दिनांक 15.07.2002 के आदेश द्वारा विद्वान वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश ने उक्त समीक्षा याचिका को स्वीकार किया जो विविध केस संख्या-1/2002 के रूप में दर्ज था।

संक्षेप में वर्णनः

"तदनुसार, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि टी.एस. 49/90 के आदेश संख्या-179 दिनांक 20.12.2001 को पारित करते समय यह बताने में यह भूल हुई कि क्या बयाना राशि वापस की जानी चाहिए या जब्त करनी चाहिए। यह एक रिकार्ॅड की भूल है। जिसे दोनों पक्षों की सुनवाई के पश्चात आक्षेप आदेश पारित करके ठीक किया जा सकता है। इसलिए समीक्षा याचिका पाेषणीय है। इसलिए मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि आदेश 47, नियम 1 जब्ता दिवानी के तहत आवेदन स्वीकार किये जाने योग्य है।

कोर्ट फीस का भुगतान सही है।

अतः यह आदेश किया जाता है कि

विविध केस संख्या-1/2002 बिना हर्जे के स्वीकार किया जाता है। इस निर्णय/आदेश के रोशनी में वाद के आदेश क्रमांक 179 दिनांक 20.12.2001 को पुनः खोलने के संदर्भ में टी.एस.49/90 का आवश्यक आदेश पारित किया जावेगा।"

अपीलार्थी ने इसके विरूद्ध कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की, जिसे प्रथम अपील संख्या-2817/2002 के रूप में दर्ज किया गया।

प्रत्यर्थी ने भी एक अपील दायर की जिसे 124/2003 के रूप में दर्ज किया गया, जिसे कथित रूप से इस तथ्य को छिपाया गया कि स्वामित्व के वाद संख्या-49/1990 को खारिज करने वाली डिक्री को प्रत्यर्थी द्वारा दायर समीक्षा आवेदन के आधार पर आंशिक रूप से खारिज कर दिया गया है। प्रतिवादीगण ने भी प्रथम विविध अपील संख्या-2817/2002 में परस्पर आपत्तियां पेश की, स्वीकृति के रूप में तीन मामलों की सुनवाई समान रूप से करने का निर्देश दिया गया था। आदेश दिनांक 31.03.2004 के दौरान उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम विविध अपील संख्या-2817/2002 को जो अपीलार्थी द्वारा दायर की गई थी, को स्वीकार किया गया तथा प्रतिवादीगण के परस्पर आपत्तियों को नोट प्रेस में खारिज किया गया। यद्यपि दिनांक 22.09.2004 के आक्षेपित आदेश द्वारा प्रतिवादीगण द्वारा दायर प्रथम अपील संख्या-124/2002 अनुमत दी गई।

निष्पादन कार्यवाहीः

इस दौरान अपीलकर्ता द्वारा स्वामित्व के वाद संख्या-412/1977 में पारित डिक्री के निष्पादन प्रक्रिया हेतु निष्पादन याचिका पेश की गई थी। प्रतिवादीगण संख्या-1 व 2 ने निष्पादन प्रक्रिया को इस आधार पर स्थगन हेतु आवेदन किया कि उनकी समीक्षा प्रार्थना पत्र के स्वीकार हो जाने से उनका संविदा की विशिष्ट अनुपालन का दावा पुनः दर्ज हो चुका है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि अपीलार्थी द्वारा इस दौरान एक वचन पत्र

दिया गया है। निष्पादन न्यायालय ने दोनों पक्षकारों को यह स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए इस न्यायालय से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी कि क्या अपीलकर्ता का वचन पत्र स्वामित्व के वाद संख्या-49/1990 को खारिज करने के बाद अस्तित्व में है। ऐसा आवेदन किया जाने के बाद इस न्यायालय ने सिविल अपील संख्या-9139/2003 में दिनांक 18.11.2023 को यह निर्धारित करते हुये अनुमति दीः

> "इस प्रकृति के वचन पत्र ऐसे वचन पत्र देने वाले व्यक्ति के पक्ष में माना जाना चाहिए। इसे बहुत दूर तक नहीं बढाया जाना चाहिए वचन पत्र देने वाला पक्ष इससे बाध्य है, लेकिन उसके कारण ऐसा अर्थ नहीं दिया जाना चाहिए कि इसका दायरा बढ जावे।
>
> यदि पक्षों की मंशा यह होती कि वाद का निर्णय होगा, जिसमें इस न्यायालय तक विवाद का अंतिम निर्णय हो सकता है, तो इसे विशेष रूप से कहा जा सकता था। हमारी राय में ऐसी घटना में एक सीधा अर्थ रखना होगा, जो अपीलकर्ता का इरादा नहीं था। यदि अपीलकर्ता का यही इरादा था तो इस वाद के सिर्फ निस्तारण की सुविधा के लिए इस न्यायालय की टिप्पणियां करने का प्रश्न सभी प्रासंगिकता खो देगा।

स्वामित्व के वाद का निर्णय केवल एक सीमित उदेश्य के लिए लंबित है अर्थात बयाना राशि की वापसी के लिए इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा फैसले और डिक्री की समीक्षा के लिए प्रतिवादीगण की विशिष्ट पालना के लिए कोई डिक्री नहीं दी है। स्वामितवाद संख्या-412/1977 में पारित डिक्री के निष्पादन में प्रतिवादीगण की बेदखली का प्रश्न केवल विक्रय की शर्तो, के आंशिक अनुपालना की उनके तर्क के आगे किरायेदार परिसर पर कब्जा जारी रखने के प्रतिवादीगण के अधिकार से सीधा संबंधित था। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 53 ए के तहत प्रतिवादीगण द्वारा अपने स्वामित्व अधिकार के आधार पर कब्जे को जारी रखने के लिए दावा किया गया तथा जिस अधिकार को न्यायालय द्वारा अवीकार किया गया था। प्रतिवादीगण निष्पादन कार्यवाही उनके विरूद्ध पारित बेदखली के डिक्री के अनुसरण में या उसे आगे बढाने में अपनी बेदखली का विरोध नहीं कर सकते।"

तीसरे पक्ष का दावा

इस तरह यह देखा जा सकता है कि प्रतिवादीगण संख्या-3 व 4 ने वादी की मां [प्रतिवादी संख्या- 1 व 2] श्रीमति गौरीबाला दास की मृत्यु के

बाद उनके बीच बिक्री के लिए एक नया अनुबंध किया, जो इन शर्तों पर था:-

"इसके बाद प्रतिवादी संख्या- 1 व 2 ने आदेश 6 नियम 17 की सपठित धारा 151 जाब्ता दिवानी के तहत उनके विशिष्ट अनुपालना/निषेध आज्ञा अर्थात स्वामित्व वाद संख्या-49/1990 में संशोधन हेतु दिनांक 02.01.1990 को एक आवेदन दायर किया तथा इस संशोधन प्रार्थना पत्र द्वारा प्रतिवादी संख्या-1 व 2 ने अपनी पत्नियों के नामों को सहवादी के रूप में जोडे जाने का प्रस्ताव रखा। क्योकि इस बीच वादी की मां [प्रतिवादी संख्या- 1 व 2] श्रीमति गौरीबाला दास की दिनांक 23.09.1990 को मृत्यु हो गई और अन्ततः उसके बाद याचिकाकर्ता ने नये सिरे से बातचीत कर बिक्री के पहले के अनुबंध को रद्द करने के बाद एक बार फिर पूरे विवाधक परिसर को सभी प्रतिवादीगण को बचने पर सहमति व्यक्त की, जिसमें प्रत्येक का चौथा हिस्सा था तथा उसके अनुसार बिक्री के चार वचन पत्र तैयार किये गए, जिसमें याचिकाकर्ता और उनके बेटे श्री शांतनु मुखर्जी, अधिवक्ता उच्च न्यायालय को मंजूरी के लिए सौप दिया गया और पूर्व मंजूरी प्राप्त करने के लिए आयकर अधिकारियों के समक्ष पेश की गई। क्योंकि यह उस समय

आयकर अधिनियम के प्रावधानों के तहत आवश्यक था।"

इसके बावजूद प्रतिवादी संख्या-3 व 4 ने आदेश 21 नियम 95, 97 से 101 सपठित धारा 47 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत इस आधार पर आवेदन किया कि वे प्रतिवादी संख्या-1 व 2 के खिलाफ डिक्री से बाध्य नहीं थे तथा निष्पादन पर रोक लगाने की प्रार्थना की परन्तु निष्पादन न्यायालय द्वारा कोई अंतरिम स्थगन प्रदान नहीं किया। अनुवाद उपरोक्त वाद संख्या-52/2003 को दिनांक 25.08.04 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। यद्यपि निष्पादन न्यायालय द्वारा कब्जा प्रदत्त करने के लिए रिट जारी करने के लिए अपीलकर्ता को आवेदन को अनुमति दे दी, लेकिन वह वास्तव में जारी नहीं किया गया था। चूंकि अपीलकर्ता ने उक्त रिट जारी करने के लिए प्रतिवादियों को निर्देश देने के लिए कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष सीओ संख्या-3229/2004 आवेदन पेश किया था, लेकिन दिनांक 14.10.2004 के आक्षेपित आदेश द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया था।

इस प्रकार अपीकर्ता हमारे समक्ष।

प्रस्तुतियांः

सिविल अपील संख्या-39/2005 मय दिनांक 14.10.2004 के निर्णय व आदेश की आलोचना करते हुये अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री शांतनु मुखर्जी ने कहा कि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों की पहली अपील पर

विचार करने में गंभीर त्रुटि की है। चूंकि इसे दाखिल करने के समय मूल डिक्री समीक्षा याचिका में पारित आदेश के संदर्भ में संशोधित थी। इस संबंध में गौरी कृष्णा सरकार व अन्य बनाम नीलमाधव साहा व अन्य (1922) 36 कैल. एल.जी. 484 पर भरोसा किया गया। विद्वान वकील का तर्क होगा कि उच्च न्यायालय ने भी दिनांक 15.07.2002 के उक्त आदेश को पारित करने के बाद उक्त अपील पर इस आधार पर विचार करने में गलती की कि प्रतिवादी प्रत्याशा अपील कर सकते है। इस संबंध में न्यायिक दृष्टांत गरिकपट्टी वीरया बनाम एन. सुब्बैया चौधरी, [1957] एससीआर 488 पर भरोसा किया गया। श्री मुखर्जी आग्रह करेंगे कि चूंकि समीक्षा याचिका खारिज होने की स्थित में अपीलकर्ता को अधिकार प्राप्त हुए थे, इसलिए उच्च न्यायालय प्रतिवादियों को समीक्षा आवेदन वापस लेने की अनुमति नहीं दे सकता था; एक बार अपीलकर्ता द्वारा अनुबंध की विशिष्ट अनुपालना के आंशिक निष्पादन का वाद के लिए वाद में पारित डिक्री को रद्द करते हुये दिनांक 15.07.2002 के आदेश के खिलाफ अपील दायर की गई थी। यह भी प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय इस तथ्य के मध्यनजर प्रतिवादियों को अपना समीक्षा आवेदन वापस लेने की अनुमति भी नहीं दे सकता था कि वाद इस विचार के सीमित उदेश्य के लिए बहाल किया गया था कि क्या उनके द्वारा भुगतान की गई बयाना राशि वापस की जानी चाहिए या जब्त कर लेनी चाहिए। इस संदर्भ में न्यायिक दृष्टांत के.एस. भूपती व अन्य, कोकीला व अन्य,[2003]

3 एससीआर 1168 पर भरोसा रखा गया। किसी भी स्थिति में चूंकि प्रतिवादियों ने या अपीलकर्ता द्वारा दायर उक्त अपील में एक परस्पर आपत्ति दर्ज की है। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा समीक्षा आवेदन वापस लेने के कथित पुनरोद्धार पर विचारण न्यायाल के फैसले को उलटने में गलती की। हालांकि इन्होंने इसके खिलाफ कोई अपील नहीं की। इस संबंध में न्यायिक दृष्टांत सुशील कुमार सेन बनाम बिहार राज्य, [1975] 3 एससीआर 942,पर भरोसा रखा गया।

विद्वान वकील का तर्क होगा कि आयकर निकासी प्रमाण पत्र देने के लिए आवेदन दाखिल करने से कोई नया समझौता नहीं होगा और इस प्रकार उच्च न्यायालय द्वारा यह मामने में स्पष्ट गलती की है कि अपीलकर्ता इससे बाध्य हे। न्यायिक दृष्टांत श्रीमति इंदिरा वी. आयकर अधिकारी, 150 आई.टी.आर. 315 और इम्मुदीपट्टम बनाम पेरिया, 28 आई.ए. 46 पर भरोसा रखा गया।

श्री मुखर्जी ने तर्क रखा कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना के लिए पारित आदेश दिनांकित 20.12.2001 निर्णय व आदेश सही था। क्योंकि प्रतिवादी ने वाद में दायर लिखित आपत्ति में यह तर्क लिया था कि संविदा को वैध रूप से निरस्त किया गया था। श्री मुखर्जी के अनुसार इस तरह की स्वीकारोक्ति को समग्र रूप से पढा जाना चाहिए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी की ओर से बिना

किसी आरक्षण के एक वाद में ऐसी स्वीकृति दूसरे वाद में साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य थी।

श्री जे.एल. सांघी प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विचारण न्यायालय ने अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना के वाद को खारिज कर दिया था। उसके खिलाफ आदेश 96 जब्ता दिवानी के तहत अपील विचारणीय थी। विद्वान वकील ने तर्क दिया कि दिनांक 15.07.2002 के आदेश के बावजूद सीमित समीक्षा की अनुमति दी गई क्योंकि अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना के लिए वाद खारिज कर दिया गया। अपील की इस चर्चा के संबंध में अपीलकर्ता द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकी। श्री सांघी आग्रह करेंगे कि किसी भी स्थिति में समीक्षा याचिका को वापस लेने कि अनुमति करने के बाद अपील सुनवाई योग्य है।

विद्वान वकील ने तर्क दिया कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णत और आदेश 12 नियम 6 के अनुरूप कानूनी दृष्टि से खराब है। किसी भी तकनीकि आधार को प्रतिवादीगण से अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना के वाद चलाने के अधिकार के रास्ते में नहीं आना चाहिए अन्यथा इससे उनके साथ स्पष्ट अन्याय होगा। विद्वान वकील आगे यह भी आग्रह करेंगे कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय ने रेखा मुखर्जी [सुप्रा] निर्णय और आदेश दिनांक

18.11.2003 में वचन पत्र प्रभावी था और प्रथम अपील संख्या-124/2003 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.09.2004 अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना के लिए स्वामित्व वाद संख्या-49/1990 को पुनर्जीवित किया गया है तथा वचन पत्र भी पुनर्जीवित रहेगा।

विवाद्यकः

इन अपीलों में हमारे विचार के लिए सबसे महत्वपूर्ण केस यह है कि क्या अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए स्वामित्व के वाद 49/1990 में पारित मूल निर्णय और डिक्री के खिलाफ प्रतिवादीगण द्वारा दायर की गई प्रथम अपील पर विचार करना उच्च न्यायालय के लिए उचित था।

समीक्षा का दायराः

अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना की अनुमति का प्रतिवादियों द्वारा दायर किया गया वाद खारिज कर दिया गया। यद्यपि उक्त डिक्री अपील योग्य थी, लेकिन दिनांक 15.07.2022 के आदेश के मध्यनजर उक्त डिक्री पूरी तरह प्रभावी नहीं रही। आदेश 47 नियम 1 दिवानी प्रक्रिया संहिता एक ऐसे व्यक्ति द्वारा खुद को व्यथित मानते हुए एक डिक्री या आदेश द्वारा एक आवेदन करने की परिकल्पना करता है, जिसमें अपील की अनुमति है। परन्तु कोई अपील नहीं की गई है। अगर वह किसी से समीक्षा प्राप्त करना चाहता है तो एक आवेदन दाखिल कर सकता है । इसलिए समीक्षा याचिका के लंबित रहने के दौरान अपील सुनवाई योग्य नहीं थी। आदेश आदेश 47

नियम 4 के तहत न्यायालय समीक्षा आवेदन को या तो स्वीकार कर सकता है या खारिज कर सकता है। समीक्षा याचिका के खारिज होने की स्थिति में आदेश अपील योग्य नहीं होगा। जबकि किसी आवेदन को मंजूरी देने वाले आदेश या अपील या अंतिम रूप से पारित वाद में दिये गए डिक्री या आदेश से अपील की जा सकती है। आदेश 47 नियम 8 में यह कहा गया है कि जब समीक्षा के लिए आवेदन स्वीकार किया जाता है तो रजिस्टर में एक नोट बनाया जाएगा और न्यायालय तुरंत मामले की दोबारा सुनवाई कर सकता है या फिर से सुनवाई के रूप में ऐसा आदेश दे सकती है जो वह उचित समझे।

प्रतिवादी ने न्यायिक दृष्टांत हमीद जहारान (मृत) व अन्य बनाम अब्दुल सलीम (मृत) एलआरएस व अन्य, [2001] 7 एससीसी 573 पर भरोसा जताया गया और इस न्यायालय ने परिसीमन अधिनियम के अनुच्छेद 136 के प्रावधान की व्याख्या करते हुए कहाः

> "34. ध्यान रखे कि विधायिका किसी की सनक या इच्छा के अधीन नहीं हो सकती। किसी भी स्थिति में डिक्री तैयार करने के लिए संलग्न स्टांप पेपर प्रस्तुत करना एक मंत्रालयिक कार्य माना जा सकता है, जिसे संभवतः विधायी जनादेश के निलम्बन के तहत नहीं रखा जा सकता। चूंकि डिक्री के साथ कोई शर्त जुडी हुई नहीं है, और इसे अन्ततः

पक्षकारों के शेयरों की घोषणा करते हुये पारित किया गया है, इसलिए न्यायालय को इस मामले में आगे निपटारे की आवश्यकता नहीं है- जो किया जाना था- किया जा चुका है। इस प्रकार परीक्षण होना चाहिए- क्या न्यायालय ने बाद के समय में फैसला देने के लिए कुछ छोड दिया है या क्या डिक्री किसी घटना के घटित होने पर निर्भर है- यानी यह कहना कि न्यायालय अपने आदेश से उस घटना में आदेश की प्रवर्तनीय स्थगन कर देता है- न्यायालय के किसी विशिष्ट आदेश द्वारा काेई स्थगन नहीं होने के कारण डिक्री के अप्रवर्तनीय होने के कारण इसका विलम्बन उत्पन्न नहीं होगा। वास्तव में, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) में डिक्री की परिभाषा ही विश्वसनीयता प्रदान करती है। उक्त टिप्पणीयों के अनुसार चूंकि शब्द का अर्थ "पक्षकार के अधिकारों का निर्णायक" निर्धारण है।"

रतनसिंह बनाम विजयसिंह व अन्य [(2001) 1 एससीसी 469] में यह निर्धारित किया गया था कि एक निर्णय को डिक्री बनाने के लिए एक वाद में एक न्यायिक निर्णय होना चाहिए जिसमें सभी या किसी भी मामले के संबंध में पक्षकारों के अधिकार हो तथा वाद में विवाद का निर्धारण होना चाहिए और ऐसा निर्धारण प्रकृति में निर्णायक होना चाहिए।

उक्त निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होते है।

वाद संख्या- 1/2002 में विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 15.07.2002 को जारी आदेश के अवलोकन से स्पष्ट होगा कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि दिनांक 20.12.2001 के फैसले में कोई त्रुटि या चूक हो गई थी क्योंकि उन्होंने यह निर्धारित नहीं किया कि क्या बयाना राशि दी जानी चाहिए या जब्त कर ली जानी चाहिए। विद्वान न्यायाधीश ने पाया कि रिकार्ॅड में एक त्रुटि थी जिसे दोनों पक्षों को सुनने के बाद उस संबंध में आवश्यक आदेश पारित करके सुधारा जा सकता था। इसलिए उन्होंने यह मानते हुए कि समीक्षा याचिका सुनवाई योग्य थी, आदेश 47 नियम 1 दिवानी प्रक्रिया संहिता के तहत उक्त आवेदन को अनुमित दी। इसके बाद उन्होंने स्वामित्व वाद संख्या-49/1990 को उसकी उसकी मूल फाइल और नम्बर पर बहाल करने का आदेश दिया था।

उक्त आदेश के परिप्रेक्ष्य में मूल डिक्री दिनांक 20.12.2001 टिक नहीं पाई।

अपील की पोषणीयताः

अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 15.07.2002 के उक्त आदेश के विरूद्ध की गई अपील आदेश 47 नियम 7 दिवानी प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में सुनवाई योग्य थी। यद्यपि प्रतिवादीगण की ओर से परस्पर आपत्तियां पोषणीय नहीं थी।

प्रतिवादीगण ने उच्च न्यायालय के समक्ष समीक्षा याचिका वापस लेने के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया। यदि ऐसा कोई आवेदन दायर किया होता तो उच्च न्यायालय इसके आधार पर अस्तित्व के संबंध में अपना मस्तिष्क लागू करता। उच्च न्यायालय की ओर से इस तरह का मस्तिष्क लागू किया जाना जरूरी था। क्योंकि इस बीच एक तीसरे पक्ष का हक उत्पन्न हो गया था।

के.एस. भूपति (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है किः

> "आदेश 23 नियम 1 दिवानी प्रक्रिया संहिता में प्रावधान गैर-वाद के सामान्य कानून सिद्दांत का अपवाद है। इसलिए सिद्दांत रूपी उपनियम 3 के तहत वादी द्वारा प्रस्तुत आवेदन को उसके द्वारा उपनियम 1 के तहत दी गई पूर्ण स्वतंत्रता के क्रम में प्रस्तुत आवेदन नहीं माना जा सकता। पूर्व में यह वास्तव में ऐसी रियायत के अनुदान को उचित ठहराने वाली परिस्थितियों के अस्तित्व के बारे में न्यायालय को सन्तुष्ट करने के बाद न्यायालय से रियायत के लिए प्रार्थना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नियम 1 के उपनियम 3 में अनुमति का दिया जाना न्यायालय के विवेक पर निर्भर है, लेकिन न्यायालय द्वारा ऐसे विवेक का प्रयोग

सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। विवेक के प्रयोग के मामले में विधायी नीति उपनियम 3 के प्रावधान से स्पष्ट है जहां 2 विकल्प प्रदान किये गये हैः 1. जहां न्यायालय सन्तुष्ट है कि किसी औपचारिक दोष के कारण वाद विफल होगा, 2. जहां न्यायालय सन्तुष्ट है कि वादी को वाद दायर करने की अनुमति देने के लिए किसी वाद की विषय वस्तु या दावे के भाग के लिए नया वाद दायर करने के पर्याप्त आधार है। उपनियम 3 के खण्ड बी में न्यायालय को यह आदेश दिया गया है कि उसे वादी को उसे दावे या दावे के एक हिस्से के लिए उसी कारण पर एक नया वाद दायर करने की अनुमति देने के लिए आधारों की पर्याप्तता के बारे में संतुष्ट होना चाहिए। न्यायालय को मामले के सभी निर्णायक पहलुओं पर विचार करते हुए संहिता के प्रावधान के तहत अनिवार्य कर्तव्य का निर्वहन करना है, जिसमें पक्षकार को कार्रवाही के समान कारण पर मुकदमेबाजी का एक नया दौर शुरू करने की अनुमति देने की वांछनीयता भी शामिल है। यह उस मामले में ओर भी महत्वपूर्ण हो जाता है जहां वादी द्वारा आदेश 23 नियम 1 के तहत आवेदन अपील के चरण में दायर किया जाता है। ऐसे मामले में अनुमति देने से असफल वादी को उसके विरूद्ध डिक्री से

बचने का मौका मिलेगा तथा विवाद के साफ स्लेट पर फिर से न्यायिक निर्णय होगा। इसके परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी को न्यायालय या निचली न्यायालयों द्वारा विवाद के फैसले का लाभ भी खोना पड सकता है।"

नया वाद दायर करने की अनुमति के साथ वाद वापस लेने की अनुमति देने से प्रतिवादी या यहां तक कि तीसरे पक्ष में निहित अधिकार भी रद्द हो सकते है। अपीलीय/द्वितीय अपीलीय न्यायालय को नये सिरे से वाद दायर करने की अनुमति के साथ वाद की अनुमति देने में विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग के लिए आदेश 23 नियम 1(3) दिवानी प्रक्रिया संहिता में निर्धारित शर्तों का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करने की दृष्टि से मामले में अपना मस्तिष्क लगाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के समर्थन में एक और कारण यह है कि अपीलय/द्वितीय अपीलीय चरण में किसी वाद को वापस लेने से न्यायालयों के सार्वजनिक समय की बरबादी होती है। जो वर्तमान समय में निचली न्यायालयों में मामलों के बडे संचय और अत्यधिक मात्रा तथा मामलों के निपटारे में देरी को देखते हुए काफी महत्वपूर्ण है। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादीगण द्वारा परस्पर आपत्तियों को नोट प्रेस नहीं किया गया। यहां अपीलकर्ता द्वारा की गई अपील को स्वीकार कर लिया गया। इसलिए यह ऐसा सख्त मामला नहीं था। जहां समीक्षा के आदेवन को वापस लेने की प्रार्थना की गई थी ताकि धारा 96 दिवानी प्रक्रिया संहिता के तहत अपील में डिक्री को चुनौती देने के लिए खुला रखा जा

सके। एक प्रतिवादी यह मान सकता है कि अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील स्वीकार की जा सकती है या उसकी परस्पर आपत्तियां खारिज की जा सकती है, लेकिन यदि वह अपने समीक्षा आवेदन या दावे को वापस लेने का इरादा रखता है और वह भी अपील स्तर पर तो उसे इसके लिए उचित आधारा देना होगा जिससे न्यायालय उस पर अपना दिमाग लगा सके। आदेश 23 नियम 1 दिवानी प्रक्रिया संहिता न्यायालय को एक विवेकाधीन अधिकार देता है। यद्यपि आदेश 23 नियम 1 पूरी तरह से समीक्षा याचिका पर लागू नहीं होता है, उसके अनुरूप सिद्दांत यह होगा कि जिसे संदर्भ में ऐसे वाद को वापस लेने या दावे के हिस्से को छोडने का निर्देश देने वाले आदेश की अनुमति केवल तभी दी जा सकती है जब न्यायालय इस बारे में संतुष्ट हो या नियम 1 के उपनियम 3 में निर्दिष्ट अन्य शर्ते पूरी होती हो। इसके उपनियम 4 के संदर्भ में वादी ऐसे हर्जे के लिए उत्तरदायी होगा जो न्यायालय लागू कर सकता है और उसे ऐसी विषय वस्तु या दावे के ऐसे हिस्से के संबंध में कोई नया वाद दायर करने से रोका जाएगा।

मामले के विशिष्ट तथ्यों व परिस्थितियों में इस तरह के आवेदन पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार भी नहीं किया गया होगा।

सुशील कुमार सेन (सुप्रा) में, मैथ्यू जे. ने एक डिक्री की समीक्षा के लिए एक आवेदन की अनुमति देने के प्रभाव पर विचार किया, जिसमें कहा गया था कि यह पारित डिक्री को रद्द करने के समान होगाः

"2 यह अभिनिर्धारित किया कि यह पूर्ण रूप से स्थापित है कि डिक्री की समीक्षा के लिए एक आवेदन की अनुमति देना का प्रभाव पारित डिक्री को रद्द करना है। जो डिक्री बाद में समीक्षा पर पारित की जाती है, चाहे वह मूल रूप से पारित डिक्री को संशोधित, उलट या पुष्टि करती हो। पुरानी डिक्री का स्थान लेने वाली नई डिक्री है। (देखें निबरन चद्र सिकदर बनाम अब्दुल हकीम, एआईआर (1928) कैल 418, कन्हैयालाल बनाम बलदेव प्रसाद आईएलआर (1906) 34 सभी 282 और प्यारी माेहन कुंडू बनाम कालू खान, आईएलआर (1917) 44 कैल 1011: 41 आईसी 497)।

3 प्रतिवादी ने 18 अगस्त, 1961 के उस डिक्री के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की, जिसमें अधिग्रहीत भूमि के लिए 200/-रूपये प्रति कट्ठा की दर से मुआवजा दिया गया था। वही दूसरी ओर इसने उस डिक्री की समीक्षा की मांग की और डिक्री को रद्द कराने में सफल रहा। जब इसने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील संख्या-81/1962 दायर की, तो यह अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित 18 अगस्त, 1961 की डिक्री के खिलाफ अपील दायर नहीं कर सका क्योंकि उस समय उस डिक्री को पहले ही डिक्री

दिनांकित 26 सितम्बर, 1961 प्रतिस्थापित किया जा चुका है, जो समीक्षा के बाद पारित की गई अपील केवल समीक्षा पारित अपील हो सकती है। जब उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने समीक्षा की अनुमति देकर गलती की है, तो उसे क्रॉस अपील की अनुमति देनी चाहिए थी। चूंकि 18 अगस्त, 1961 को पारित डिक्री के खिलाफ प्रतिवादी द्वारा कोई अपील नहीं की गई थी, जिसमें भूमि के लिए 200/-रूपये प्रति कट्ठा की दर से मुआवजा दिया गया था तो वह डिक्री अंतिम हो गई। प्रतिवादी ने उस डिक्री के खिलाफ अपील दायर करने का कोई प्रयास नहीं किया जब उच्च न्यायालय ने यह पाया कि समीक्षा को गलत तरीके से इस आधार पर अनुमति दी गई कि डिक्री पुनर्जीवित हो गई वह फिर से जीवन में आ गई।"

हमारा ध्यान श्री सांघी द्वारा कृष्णा अय्यर, जे. की निम्नलिखित खेदजनक सहमति वाली राय की ओर आकर्षित किया गया हैः

"प्रक्रियात्मक कानून कुछ प्रणालियों में इतना हावी है कि वह मूल अधिकारों, सर्वाभूत अधिकारों व समूचित न्याय पर हावी हो जाता है। मानवतावादी नियम यह है कि प्रक्रिया कानूनी न्याय की दासी होनी चाहिए, मालकिन नहीं, जहां

पूर्व डेबिटो जस्टिसिया के कार्य करने के लिए न्यायाधीशें में एक अवशिष्ट शक्ति निहित करने पर विचार करने के लिए मजबूर किया जाता है अन्यथा दुखद परिणाम पूर्णतया से असमान होगा। वर्तमान मामले में, सिविल कोर्ट द्वारा दिए गए मुआवजे की दर में असाधारण वृद्धि को चुनौती देने के लिए राज्य द्वारा लगभग हर कदम एक वादी द्वारा उठाया जा सकता था। और, पीछे देखने पर, कोई पाता है कि समीक्षा आवेदन और अपीलीय चरण में बहुत सफलता पक्षकार के लिए एक आपदा साबित हुई है, हो सकता है कि सरकार ने अपील में दी गई वृद्धि पर सफलतापूर्वक हमला किया हो, अतिरिक्त सबूत पेश किए हों। परन्तु महत्वपूर्ण प्रक्रियात्मक खामियां में शायद इसके क्रूर परिणाम में कोई जगह नहीं है"।

लेकिन यह न्यायालय किसी निर्णय के अनुपात निर्णय से बंधा है, न कि केवल टिप्पणियों से।

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि हालांकि विद्वान न्यायाधीश को उम्मीद थी कि संसद एक व्यापक, हालांकि सावधानी से शब्दों में कहे गए प्रावधानों द्वारा न्यायाधीश को न्याय का अंतिम संरक्षक बनाने की बुद्धिमत्ता पर विचार करेगी, जहां उचित राहत में बाधा कमजोरियों से संबंधित है,

यहां तक कि गंभीर लगने वाली भी। प्रक्रियात्मक कानून में लेकिन संसद उस पर प्रतिक्रिया देने में विफल रही है।

इस प्रकृति के मामले में ग्रहण के सिद्धांत का कोई अनुप्रयोग नहीं है। धारा 96 दिवानी प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में की गई अपील को उसके आदेश 41 में निहित आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। इसके दाखिल होने के समय एक अपील या तो सुनवाई योग्य होगी या नहीं होगी। सम्मान के साथ, उच्च न्यायालय का यह मानना सही नहीं था कि ऐसी अपील प्रत्याशा में दायर की जा सकती है। यदि कानून में ऐसी प्रक्रिया पर विचार किया गया है; इसमें उत्तरदाताओं ने मूल अपील दायर नहीं की होगी या विचारण न्यायालय के समक्ष आवेदन वापस लेने की प्रार्थना नहीं की होगी। कानूनी सलाह पर एक समीक्षा आवेदन दायर करने और उसमें आंशिक रूप से सफल होने के बाद, 20.12.2001 की पूरी डिक्री के खिलाफ अपील करना उसके लिए खुला नहीं था, जिसके तहत वाद पूरी तरह से खारिज कर दिया गया था। प्रतिवादी केवल डिक्री के उस हिस्से से अपील कर सकते थे जिसके संबंध में समीक्षा की अनुमति नहीं दी गई थी। अनुबंध के विशिष्ट पालन के लिए एक वाद में, विकल्प के तौर पर एक एक प्रार्थना पत्र आम तौर पर इस आशय से की जाती है कि यदि न्यायालय अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन से डिक्री देने के लिए इनकार करती है, तो वह ब्याज सहित बयाना राशि वापस करने का निर्देश दे सकती है।

समीक्षा का अधिकार वैधानिक अधिकार है। यदि शर्तें पूरी हो तो ऐसे अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। अपील का अधिकार भी ऐसा ही है। समीक्षा का अधिकार और अपील करने का अधिकार अलग-अलग आधार पर है, हालांकि कुछ आधार आच्छादित हो सकते है। यदि समीक्षा की अनुमति दी जाती है, तो डिक्री संशोधित हो जाती है, लेकिन डिक्री का ऐसा संशोधन कोई सहायक या पूरक कार्यवाही नहीं है, जिसे समीक्षा प्रदान करने वाली डिक्री को रद्द करने पर पुनर्जीवित किया जा सके।

गरिकापट्टी वीरया (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया हैः

> "सैद्धांतिक रूप से प्रश्न पर विचार करते हुए, एक अपील एक कार्यवाही है जिसके द्वारा एक निचली न्यायालय के फैसले की शुद्धता को एक वरिष्ठ न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है। इसलिए अपील का अधिकार अपनी प्रकृति से तभी उत्पन्न हो सकता है जब एक निर्णय जिसके द्वारा एक वादी व्यथा दी गई है, और यह कहना विरोधाभासी लगता है कि यह मामले में निर्णय सुनाए जाने से पहले ही उत्पन्न हो जाता है।"

गौर कृष्णा सरकार (सुप्रा) में, आशुतोष मुखर्जी, जे. ने एक डिवीजन बेंच में यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय यह निर्धारित करने में

सक्षम है कि जब समीक्षा की अनुमति दी जाती है, तो मामले को आंशिक रूप से या सम्पूर्ण रूप से फिर से खोला जाना चाहिए, और यह दृष्टिकोण का इस सिद्धांत पर समर्थन नहीं किया जा सकता कि जब भी समीक्षा के लिए कोई आवेदन किया, तो आवश्यक रूप से पूरे मामले को फिर से खोला जाना चाहिए और उस पर विचार किया जाना चाहिए। यह देखा गया कि जब समीक्षा की जाती है, तो समीक्षा स्वीकार किये जाने के न्यायाधीश के निर्णय के परिणामस्वरूप मूल डिक्री का अस्तिव समाप्त हो जाता है।

इसलिए, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय का मानना सही था कि प्रतिवादियों द्वारा दायर की गई पहली अपील सुनवाई योग्य थी। इस आदेश से प्रतिवादियों के साथ अन्याय हो सकता है लेकिन यह उनकी अपनी रचना है। यह न्यायालय सहानुभूति के बावजूद, जैसा कि सुशील कुमार जैन (सुप्रा) के मामले में था, बाध्यकारी उदाहरणों की अनदेखी करके उनके पक्ष में नहीं रह सकता।

यहां प्रतिवादी स्वयं की गलती का फायदा नहीं उठा सकते। इसके अलावा वे असंगत और विरोधाभासी रूख अपना रहे थे। उन्होंने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 53-ए के संदर्भ में अनुबंध के एक भाग के निष्पादन को आगे बढ़ाने के लिए एक किरायेदार के रूप में सूट परिसर पर कब्जे का दावा किया था और साथ ही कलकत्ता थिका के संदर्भ में पश्चिम बंगाल राज्य में निहित स्वामित्व का भी दावा किया था। किरायेदारी

(अधिग्रहण एवं विनियमन) अधिनियम, 1981।

हमने जो विचार लिए हैं, उनके लिए हमारे लिए इस बड़े सवाल पर जाना जरूरी नहीं है कि क्या दिवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 12, नियम 6 के संदर्भ में मुकदमा खारिज किया जा सकता था या नहीं।

निष्पादन मामलाः

उपराेक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए,(2004) 1 एससीसी 483/2003 में रिपोर्ट की गई सिविल अपील संख्या 9131 में हमारे फैसले को ध्यान में रखते हुए स्वामित्व के दावे संख्या-49/1990 में पारित डिक्री लागू करने योग्य हो गई है। श्री सांघी की इस आशय की दलील कि प्रतिवादीगण द्वारा दिया गया वचन पत्र पुनर्जीवित हो गया है। अस्वीकार की जाती है। अपीलकर्ता द्वारा दिया गया वचन पत्र एक अंतर्वर्ती निषेधाज्ञा के समान है, जो उसे तब तक डिक्री को क्रियान्वित करने से रोकता है, जब तक कि प्रतिवादियों के विशिष्ट निष्पादन निर्णय विचारण न्यायालय द्वारा नहीं कर लिया जाात है, क्याेंकि इस न्यायालय ने माना है कि उक्त वचन पत्र को पक्षकारों द्वारा दिये जाने के बाद पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है। वहां से जारी किया गया [कटलर बनाम वैंड्सवर्थ स्टेडियम लिमिटेड देखें। (1945) 1 सभी ईआर 103]

निष्कर्षः

उपर्युक्त कारणों से, आक्षेपित निर्णयों को बरकरार नहीं रखा जा

सकता है, जिन्हें तदनुसार रद्द कर दिया गया है। अपीलें स्वीकार की जाती हैं। हालांकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हर्जे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

अपील स्वीकार की गई।

नोट- यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी पवन कुमार सिंघल (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझााने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।

पी०के०एस०